ARCADE BUSINESS COLLEGE

www.abcollege.org

हिन्दी रचना

B.B.M. / B.C.A. (1st Year)

UNIT — I

कविता कानन

संपादक : डॉ० देवदत्त राय

1. विद्यापति

जीवनी और काव्यगत विशेषताएँ

मैथिल-कोकिल विद्यापति आदिकाल और भक्तिकाल की संधि रेखा पर उदित हुए। अन्य प्राचीन कवियों की तरह इनके जन्म एवं मृत्यु काल के संबंघ में विद्वानों के बीच एक मत का आभाव हैं उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनका जन्म 1350 ई० तथ मृत्यु 1450 ई० के लगभग में हुआ था। विद्यापति का जन्म मिथिलांचल के विस्फी ग्राम में ठाकुर परिवार में हुआ था। उनके पिता गणपति ठाकुर राजा शिव सिंह के दरबारी कवि थे। वे उच्च कोटि के श्रृंगारिक कवि थे। विद्यापति भक्ति और श्रृंगार के कवि थे। उनकी भक्ति शंकर, दुर्गा और श्रीकृष्ण के साथ-साथ गंगा के प्रति भी थी। इन्हीं विविधताओं के चलते ही उन्हें अभिनव जयदेव, कविराज, रशिक शिरोमणि आदि उपाधियों से सम्मानित किया गया है। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उनकी रचनाएँ मैथिली के साथ-साथ संस्कृत और अवहट्ठ में भी है। परन्तु उनकी लोकप्रियता का आधार मैथिली भाषा में रची गयी रचनाएँ हीं हैं।

विद्यापति के संबंध में शिव प्रसाद सिंह ने ठीक ही कहा है कि वे दरबारी होते हुए भी जनकवि थे, श्रृंगारिक होते हुए भी भक्त कवि थे, शैव या वैष्णव होते हुए भी धर्म निरपेक्ष थे।

विद्यापति को विद्याध्ययन और लेखन संस्कार कुल परंपरा से ही प्राप्त हुआ था। पिता की तरह उन्हें भी राजा शिव सिंह की कृपा प्राप्त हुई। वे उनके अभिन्न मित्र भी थे। इसीलिए राजा शिव सिंह एवं रानी लखिमा देवी का उन्होंने अपनी रचनाओं में गुणगान किया है। वे मिथिला प्रदेश के ऐसे व्यक्तित्व थे जिनके संबंध में अनेक लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं। भगवान शंकर के वे पहुँचे हुए भक्त थे। कहा जाता है कि शंकर खुद उगना के नाम से उनके साथ सेवक के रूप में रहते थे। माँ दुर्गा की भी उन्होंने अपार भक्ति की है तथा कृष्ण की भी भक्ति में उन्होंने रचनाएँ की है। गंगा की इन्होंने इतनी भक्ति की कि जब कवि का अन्त समय आया तो कहा जाता है कि वे गंगा के किनारे चले गए, उनकी स्तुति की तो गंगा की लहरें खुद बढ़ कर कवि के निकट आ गयीं।

काव्यगत विशेषताएँ :-

संस्कृत में रचित विद्यापति के निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध होते हैं :- (1) भू-परिक्रमा (2) दुर्गाभक्ततरंगिणी (3) पुरुष परीक्षा (4) लिखनावली (5) गंगा वाक्यावली (6) विभा सागर (7) गया पत्तलक (8) वर्षकृत्य (9) दान वाक्यावली।

अवहट्ठ और मैथिली में उनके क्रमशः दो-दो ग्रंथ है :- (1) कीर्तिलता (2) कीर्तिपताका तथा (1) पदावली (2) गौरव विजय ।

कवि विद्यापति आदिकालीन वीर गाथाओं के बीच जिस प्रकार से भक्ति और श्रृंगारिक माधुर्य का रस घोला उनका ऐतिहासिक महत्व है। इनकी रचनाएँ भाषा और भाव के दृष्टिकोण से संवेदनशील कवि की भूमिका का निर्वाह समुचित देखने को मिलता है।

कवि विद्यापति का कुल शिव उपासक था। उनके पिता की शिवोपासना के फलस्वरूप उनका जन्म हुआ था। फलत: उनकी रचनाओं में शिव की उपासना है। वे अपने दु:खो के निवारण हेतु प्रार्थना करते हैं –

कखन हरब दु:ख मोर हे भोलेनाथ।

इन्होंने अपनी रचनाओं में देवी के काली रूप की स्तुति करते हुए लिखा है –

जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि।

पसुपति - भामिनी माया।

इनकी रचना श्रीकृष्ण की भक्ति में भी है –

माधव हम परिणाम निराशा।

तहु जगतारन दीन दया मय, अतए तोहर विसवासा।

इन्होंने गंगा के प्रति भी अपार भक्ति की है –

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे

छाड़इत निकट नय बह नीरे

विद्यापति मुख्यत: भक्ति और श्रृंगार के कवि हैं। दोनों क्षेत्रों में उन्होंने इतनी सहज और सबल भाव व्यंजना की है कि उन्हें भक्त या श्रृंगारिक कवि मानने का विवाद विद्वानों के बीच प्राय: आज भी बना हुआ है। फिर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने न केवल उन्हें श्रृंगारिक कवि माना है बल्कि उन्हें भक्त कवि मानने वालों पर व्यंग भी किया है कि ''आध्यात्मिक रंग के चश्में आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने 'गीत-गोविंद के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के पदों को भी।''

पद का वाचन

(1)

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे, छाड़इत निकट नयन बह नीरे।

करजोरि बिनमओ विमल तरंगे, पुन दरसल होए पुनमति गंगे।

एक अपराध छमेव मोर जानी, परसल माथ पाए तुअ पानी।

कि करब जप-तप जोग धेयाने, जनम कृतारथ एकहित सनाने।

भनई विद्यापति समदहो तोही, अन्तकाल जनु विसरह मोही।

भावार्थ

मैथिल कोकिल विद्यापति न सिर्फ शंकर, दुर्गा और कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति निवेदित की है बल्कि पतितपावनी गंगा के प्रति भी उन्होंने अपार श्रद्धा-भक्ति निवेदित की है। ऐसा कहा जाता है कि विद्यापति के जीवन के आखिरी समय में उमड़ती गंगा की लहरों ने पुत्रवत अपने आँचल में समेटते हुए शरण दी थी। प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि ने माँ गंगा के प्रति अपनी विनम्र भक्ति निवेदित की है।

विद्यापति को गंगा के सानिध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका हर दिन, हर रात, हर पल गंगा के ही सानिध्य में व्यतीत होता था। वे गंगा के तट पर रहते, गंगा जल पीते तथा गंगा की धारा में डुबकियाँ लगाते। किन्तु कालान्तर में उन्हें गंगा से अलग होने के लिए विवश होना पड़ा। इसी अवसर पर कवि के मुख से यह कविता फूट पड़ी।

कवि कहते हैं कि हे माता गंगे, आपके निकट रह कर मैंने अपार सुख पाये। इतने सुखों का आनंद लिया जिसका वर्णन करना असंभव है। जितना प्रेम और श्रद्धा-भाव तुम्हारे प्रति मेरे मन है तथा तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति ममता का अक्षय भंडार है उसके कारण आज तुमसे बिछुड़ने की कल्पना मात्र से आँखों से आंसुओं की अनवरत धाराएँ बह रही हैं। लेकिन इस विवशता भरे वियोग के बावजूद मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि हे निर्मल धार बहाने वाले गंगें, तुम मुझे इसी जीवन में पुनः दर्शन का सौभाग्य अवश्य प्रदान करना। मैं इसी आशा में जीता रहूँगा। हे पुण्यमति गंगे! तुम्हारे पुर्नदर्शन की बाट जोहता रहूँगा। मेरी एक और विनती है कि मैंने जो अक्षम्य अपराध किया है, उसे क्षमा करना। मेरा अपराध है कि माँ के चरणों में पुत्र का सिर झुकना चाहिए, लेकिन स्नान के समय हर बार मेरे अपवित्र पाँव तेरे मस्तक पर पड़ते हैं। यह मेरी गलती दुर्भाग्यपूर्ण है। मेरे इस पाप को कृपा करके क्षमा कर देना। लोग तीर्थो में भटकते हैं, मंदिरों में अक्षत-फूल चढ़ाते हैं और माथा टेकते हैं, लेकिन जप-तप, योग और ध्यान से कुछ हासिल नहीं कर सकते, वहीं पापी भी तेरे पवित्र जल में डुबकी लगा ले तो वह तर जाता है। उसका जीवन सार्थक और सफल हो जाता है। विद्यापति अपनी भावना को बखानते हुए कहते हैं कि हे माँ! चाहे जो भी हो आपके आँचल की छाँव पुनः इसी जीवन में नसीब हो, यही मेरी कामना है, हे माँ! मुझे भूल मत जाना।

पद का वाचन

(2)

नव वृंदावन नव-नव तरू गन नव-नव विकसित फूल।
नवल बसन्त नवल मलयानिल, मातल नव अलिकूल।
बिहरई नवल किसोर।
कालिंदी-पुलिन कुञ्जनवन सोभन नव-नव प्रेम-विभोर॥
नवल रसाल-मुकुल-मधु मातल नव कोकिल कुल गाय।
नवजुवती गन चित उमताअई नव रस कानन धाय॥

नव जुवराज नवल नव वर नागरि मीलए नव-नव भाँति।
निति-निति ऐसन नव-नव खेलन, विद्यापति मति माति।

भावार्थ

मैथिल कोकिल विद्यापति की रचना में प्रकृति की छटाओं का वर्णन अत्यन्त रोचक ढ़ंग से किया गया है। यह पद उनकी पदावली में वसंत वर्णन में संकलित है। भक्ति तथा श्रृंगार-वर्णन के साथ-साथ कविवर विद्यापति ने प्रकृति की छवियों का वर्णन अत्यंत कुशलता के साथ किया है। प्रस्तुत कविता इसका सुन्दरतम उदाहरण है। इस रचना में प्रकृति की मोहकता, लावण्यता और रमणीयता निखर कर प्रस्तुत हुई है।

विद्यापति वसंत ऋतु में वृंदावन के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ के वृक्ष समूह और विकसित फूल सभी नये हैं। वसंत नया है, मलय पवन में नयी ताजगी हैं। भौंरों का समूह इस ताजगी से मदमस्त हो रहा है। वृन्दावन के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि इस वसंत में ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तरोताजे नवयुवक श्रीकृष्ण विचरण कर रहे हैं। यमुना का तट झाड़ियों से घिरा हुआ है, कुंजों से भरे वन सुशोभित हो रहें हैं। ऐसे स्थलों में श्रीकृष्ण नूतन प्रेम-भावों से विभोर हो रहे हैं। नूतन आम्र मंजरियों पर कोयल मत्त भाव से कूक रही है। नवयुतियाँ ऐसे परिवेश में अपने को स्वतंत्र अनुभव करती है। उनका चित्त अस्थिर हो रहा है। ऐसा मालूम होता है मानो श्रृंगार रस स्वत: शरीर धारण कर वृंदावन में भ्रमण कर रहा है। ऐसे वातावरण में नूतन भावों से भर राधा और कृष्ण की जोड़ी नये-नये प्रकार से मिल रही है। कवि विद्यापति कहते हैं कि वसंत ऋतु में नित्यप्रति युवक और युवती भावों से भरकर केलि क्रीड़ा करते हैं। साथ ही राधा-कृष्ण की जोड़ी के कारण वृंदावन में नित्यप्रति मादकता छायी रहती है। इस प्रकार के वातावरण में विद्यापति की मति भी मदमत्त हो रही हैं।

संदर्भ सहित व्याख्या- नमूना

1. **"बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे, छाड़इत निकट नमन बह नीरे।**
करजोरि विनमओं बिमल तरंगे, पुन दरसन होए पुनमति गंगे।
एक अपराध छमेव मोरजानी, परसल माथ पाए तुअ पानी।
कि करब जप-तप जोग धेयाने, जनम कृतारथ एकहि स्नाने।"

व्याख्या

प्रस्तुत 'गंगा स्तुति' हमारी पाठ्य पुस्तक कविता-कानन में संग्रहित है, तथ व्याख्येय पंक्तियाँ इसी पद से अवतरित है। पतित-पाविनी गंगा के प्रति कवि की श्रद्धा-भक्ति एवं क्षमा-प्रार्थना यहाँ द्रष्टव्य है।

कवि के जीवन का एक बड़ा हिस्सा गंगा के सानिध्य में बीता। अत: उनका उनका तट छोड़ते कवि उद्‌गार विह्‌वलता की सीमा तक जा पहुँचते हैं। वे स्वीकार करते है कि उन्होंने गंगा-तट पर रहकर, गंगाजल पीकर और गंगा की धारा में डुबकियाँ लगाकर अपार सुख-संतोष पाये, फलत: उनसे बिछड़ना दु:खदायी लग रहा है। आँखें लगाकर बरस रही है। अत: हे निर्मल धार बहानेवाली पुण्यमति गंगे! आप मेरी विनती सुन लें कि इसी जीवन में एक

बार फिर दर्शन का सौभाग्य प्रदान करेंगीं। हे माता! मैं कैसे कहुं, लेकिन कहना ही है कि मुझसे एक ऐसा अपराध हो गया है, जिसके लिए क्षमा माँगना भी अपराध होगा। वह यह कि पुत्र का मष्तक तो माँ के चरणों में झुका रहना चाहिए, लेकिन मैंने आपके पवित्र मष्तक पर अपने गंदे पांव रखकर आपको अपमानित किया है। विद्यापति कहते है कि जप-तप-योग ध्यान छोड़कर केवल गंगा स्नान कर ले तो एक ही डुबकी में सारे पाप घुल जाते हैं।

2. ''नव वृन्दावन नव-नव तरू गन नव-नव विकसित फूल।
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलिकूल।''

व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य पुस्तक कविता कानन में संकलित मैथिल कोकिल विद्यापति के 'वसंत-वर्णन' शीर्षक पद से ग्रहित है। विद्यापति भक्ति और श्रृंगार दोंनो रसों के महाकवि है। इन पंक्तियों में वृंदावन के नैसर्गिक सौंदर्य का अद्‌भुत वर्णन है। वृंदावन के नये बाग में नये-नये वृक्ष और उनमें नये-नये पुष्प खिले हैं। ऋतुराज वसंत का आगमन हुआ है। नयी सुगंधित हवाएँ चल रही है। भौंरें पुष्पों की सुरभि से उन्मुक्त हो झूम रहे हैं। इसी वृंदावन के बाग में श्रीकृष्ण विहार कर रहें हैं।

इस प्रकार इन पंक्तियों में विद्यापति की भाषा की माधुर्यता के साथ-साथ अद्‌भुत छटाओं का संयोग देखने को मिलता है।

❖❖❖

अभ्यास के प्रश्न

1. विद्यापति का जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. 'गंगा स्तुति' पद का भाव सौंदर्य स्पष्ट करें।
3. विद्यापति द्वारा रचित 'वसंत वर्णन' पद की समीक्षा कीजिए।
4. सप्रसंग व्याख्या करें –
    1. कि करब जप-तप-जोग धेयाने,
       जनम कृतारथ एकहि सनाने।
    2. नवल रसाल-मुकुल-मधु मातल नव कोकिल कुल गाय।
       नवजुवती गन चित उमताअई नव रस कानन धाय।।
5. 'कविता कानन' पाठ्य पुस्तक के आधार पर विद्यापति के पदों का भाव-सौंदर्य स्पष्ट करें।

❖❖❖

2. कबीर

जीवन-वृत एवं काव्यगत विशेषताएँ

अन्य आदिकालीन और मध्यकालीन कवियों की भाँति कबीर का जन्मकाल निश्चित प्रमाणों के अभाव में विवादास्पद रहा है। वे भक्ति काल के ज्ञानाश्रयी निर्गुण शाखा के प्रवर्त्तक के रूप में जाने जाते हैं। इनके जन्म के संबंध में कबीरपंथियों के बीच एक दोहा प्रचलित है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

प्रस्तुत दोहा को आधार मान कर यह कहा जाता है कि कबीर का जन्म संवत् 1455 (1398 ई०) जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को हुआ है। इस मत का समर्थन डा० माता प्रसाद गुप्ता ने किया है। परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य हजारी प्रसार द्विवेदी कबीर का जन्म संवत् 1456 (1399 ई०) माना है और 1518 ई० को उनका शरीर त्याग मान लिया गया है।

कबीर का जन्म काशी में हुआ था और स्वामी रामानन्दाचार्य ने उन्हें उपदेश दिया था। कहा जाता है कि एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न लहरतारा तालाब के पास फेंके हुए इस अनाथ बालक को नीरू और नीमा नामक जुलहा दम्पत्ति ने पाल-पोष कर बड़ा किया। बड़ा होने पर ये साधुओं की संगति में बैठते थे और कपड़ा बुनने का काम भी करते थे। वे गृहस्थ होकर भी गृहस्थ नहीं थे। इनकी पत्नी का नाम लोई और बेटा कमाल के नाम से जाना जाता था। इनकी कमाली और निहाली नामक दो कन्याएँ भी थीं। कबीर को एक सौ बीस वर्षों की लम्बी आयु तक जीवित रहने का सौभाग्य मिला था। जीवनरूपी लम्बी चादर को उन्होंने इतने लम्बे काल तक ओढ़ा, जीया और अंत में गर्व के साथ कहा भी-

सो चादर सुरनर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली कीन्ही चदरिया।

दास कबीरा जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनि चदरिया॥

हिन्दी साहित्य के स्वर्णयुग भक्तिकाल के पहले भक्त कवि कबीरदास थे। भक्ति को जन-जन तक काव्य रूप में पहुँचा कर उसे सामाजिक चेतना को जोड़ने का काम भक्तिकालीन भक्त कवियों ने किया। ऐसे भक्त कवियों में पहला ही नहीं सबसे महत्वपूर्ण नाम भी कबीर को ही माना जाता है।

कबीर जन्म भर निरक्षर भट्टाचार्य रहे और साधना, ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में इतनी दूरी तक छलांग मार गए कि परवर्ती ज्ञान-साधना के अध्ययन-अनुशीलन का विषय बन गए। कबीर रामानन्दाचार्य के शिष्य माने जाते

हैं पर गुरु मंत्र के रूप में प्राप्त राम नाम को उन्होंने सर्वथा निर्गुण रूप में स्वीकार किया। विशेष पंथ मठ-मंदिर के वे आजन्म विरोधी रहे। सिकन्दर लोदी जैसे कट्टर मुसलमान शासक के काल में भी धर्म विरोधी उक्तियाँ कबीर से ही संभव थी। मृत्युकाल में वे मगहर चले गए।

काव्यात्मक परिचय

भक्तिकाल, जिसे स्वर्णकाल के नाम से जाना जाता है, में भक्ति काव्य के प्रथम चरण ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति धारा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि के रूप मे कबीर दास जाने जाते हैं। कबीर अपने आराध्य को राम ही कहा है पर उनके राम दशरथ पुत्र राम नहीं थे। कहा जाता है कि कबीर की आस्था असीम थी। उन्हें किसी सीमा में बाँधना संभव नहीं था।

कबीर जिस निर्गुण के उपासक थे उसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्तिधारा का नाम दिया है। यानि कबीर की भक्ति की पहली विशेषता अगर उनका निर्गुण होना है तो दूसरी विशेषता उसमें ज्ञान और साधनाओं का संयोग है। कबीर ने शरीर की अनेक नाड़ियों-चक्रों की चर्चा की है जिन्हें साधना द्वारा पहचाना और विकसित किया जा सकता हैं। उन्होंने कहा हैं-

''इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।

आठ कमल दस चरखा डोले, पाँच तत्व गुन तीनी चदरिया।।''

कबीर कहते हैं कि ईश्वर की स्थिति जीव के अन्दर है, उसे किसी मंदिर-मस्जिद में खोजने जाना उतना ही हास्यास्पद है जितना कि पानी के बीच रहने वाली मछली को प्यासी कहना। कबीर का कहना है कि आत्मज्ञान के बिना मथुरा-काशी आदि सभी तीर्थ महत्वहीन हो जाते हैं। जिस तरह कस्तूरी मृग अपनी नाभी की कस्तूरी के विषय में अन्जान बन उसे पाने के लिए वन-वन भटकता फिरता है, वही स्थिति आत्मज्ञान के बिना मनुष्य की होती है।

कबीर के निर्गुण में ज्ञान और साधना की प्रमुखता है, फिर भी उन्होंने प्रेम भाव को उत्कटता और गुरु के महत्व का उल्लेख बार-बार किया है। गुरु को तो वे ईश्वर से भी अधिक महत्व वाला मानते हैं। उनकी दृष्टि में गुरु की महत्ता इसलिए अधिक है कि उन्होंने ही ईश्वर के विषय में ज्ञान दिया है।

प्रेम और भक्ति के संबंध में कबीर स्थिति के पक्षधर हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है -

''प्रेमगली अति सांकरी जामे दोउ न समाय।''

कबीर के काव्य की एक बड़ी विशेषता सामाजिक चिंतन भी है। सम्प्रदाय या पंथ के नाम पर एक दूसरे को हीन समझने की प्रवृत्ति की वे निन्दा करते हैं। इस मामले में वे हिन्दु और मुसलमान दोनों को कटु शब्दों में फटकारते हैं। मूर्तिपूजन को वे अनावश्यक मानते हैं। उन्होंने कहा है -

''पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।

ताते ये चक्की भली पीस खाय संसार।।''

इसी तरह मुस्लिम कट्टरता और अंधविश्वास को भी वे हास्यास्पद बताते हुए कहते हैं-

''कांकर पाथर जोरि के मस्जिद दियो बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।''

कबीर की मान्यता है कि अलग-अलग पंथ होने के बावजूदर ईश्वर एक है -

''नदिया एक घाट बहुतेरे, कहे कबीर समझ के फेरे।''

कबीर का विशाल काव्य-संसार उनकी प्रतिभा का परिणाम है। साधु संगति और अपने मौलिक अनुभवों के आधार पर ही उन्होंने इतना विशाल काव्य संसार खड़ा किया।

कबीर के काव्य 'बीजक' साखी, सबद और रमैनी तीन भागों में विभक्त है जिसमें उनका भाव पक्ष हिन्दी काव्य संसार का गौरव है। उसकी विशिष्टता के सामने कबीर की भाष की अनगढ़ता छिप जाती है।

पद का वाचन

(1)

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।

चंदन काठ के बनल खटोलवा, तापर दुलहिन सूतल हो।

उठो रि सखी मोरी माँग समारो, दुलहा मोसे रूठल हो।

आये यमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन आँसुआ टूटल हो।

चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँदिशि, धू धू ऊठल हो।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो।।

भावार्थ

ज्ञानश्रयी निर्गुण धारा के प्रवर्त्तक संत कबीर को ये पंक्तियाँ वैराग्य भाव को प्रेरित करता है। इस पद के माध्यम से कबीर ने यह संकेत दिया है कि प्राणी की मृत्यु आवश्यक है। उन्होंने आत्मा को विरहिनी बताया और आत्मा से परमात्मा को मिलन को सुखद बताते हुए अनेक पदों की रचना की है।

प्रस्तुत पद को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए कबीर ने अरथी, जिस पर मृत शरीर को लिटाया जाता है उसे चंदन का खटोला बताया और मृत शरीर को दुलहनियाँ कहा है। कबीर ने मृत्यु के देवता यमराज को ठगवा कहा है। क्योंकि यमराज सभी जीवों के प्राण हरने वाले हैं। पार्थिव शरीर को दुल्हन कहा है। जिस प्रकार कोई दुल्हन अपने पलंग पर आराम से सोई रहती है, ठीक उसी प्रकार अरथी पर शरीर पड़ा रहता है। आत्मा उस मृत का दुल्हा है जो उस शरीर से रूठ कर सदा-सदा के लिए उसने दूर चला गया है। जिस प्रकार दुल्हिन को चार कहार उठा कर ले जाते हैं उसी प्रकार चार लोग उसे उठा कर ले जाते हैं। अंत में उस मृत शरीर को अग्नि को समर्पित किया जाता है और चारों ओर से उसकी चिता धू-धू कर जल उठती है।

कबीर कहते हैं कि सभी लोगों का इस संसार से एक दिन नाता टूट जाता है। दुल्हन अपने सखी से माँग सजाने को कह रही है, वह सोच रही है कि शायद उसका रूप-सौंदर्य से मोहित होकर उसका दुल्हा वापस आ जाय। परंतु जिस प्रकार ठग लोगों की सम्पत्ति हर लेता है उसी प्रकार यमराज प्राणियों के प्राणरूपी धन को हर लेता हैं। प्रिय जन उस मृत शरीर को चंदन की अर्थी में रख कर सुगंधित पुष्पों से दुल्हन की भाँति सजाते हैं। नए-नए वस्त्र पहनाए जाते हैं और उसे सदा-सदा के लिए विदा कर दिया जाता है।

पद का वाचन

(2)

भगति बिनु बिरथे जनम गयो।

साध संगति भगवान भजन बिन कही न सच्च रह्यो।

ज्यों उद्यान कुसुम परफुल्लित किनहि न घ्राड लायो।

तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि-फिरि काल हयो।

या धन जोबन अरू सुत दार पेखेन को जु दयो।

तिनहीं माहि अटकि जो उरझे इन्द्री प्रेरि लायो।

औध अनल तन तिन को-मंदर चह दिसि ठाठ ठयो।

कहि कबीर भव सागर तरन कौ मैं सति गुरू ओट लयो।

भावार्थ

हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्णकाल के जाने-माने संत ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा के प्रवर्तक कबीर का पद कविता-कानन में सकलित हैं जिसमें उन्होंने भगवान की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

कवि का कहना है कि भक्ति कर्म और ज्ञान से श्रेष्ठ है। भक्ति की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति के बिना यह जन्म व्यर्थ है, उनका मानना है कि साधु की संगति और ईश्वर के भजन में ही सुख और आनन्द है। जिस प्रकार उपवन में लिखे हुए फूल का गंध सभी लेते हैं। वह फूल अपन सुगंध बिखेर कर समाप्त हो जाता हैं। उसी प्राकर आत्मा अनेक योनियों में भटकती रहती है और हर बार काल का ग्रास बनती रहती है। धन, यौवन, संतान और पत्नी, जिनका पालन-पोषण किया जाता है उन्हीं में मन-प्राण उलझे रहते हैं।

कबीर ने सतगुरु को अनिवार्य बताते हुए कहा है कि उसके बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। संसार रूपी भवसागर से पार उतरने के लिए सद्गुरु का सहारा आवश्यक है। माया रूपी इस संसार से मुक्ति के लिए सत्संग, भक्ति और भजन अनिवार्य है। आत्मा पुष्प की सुरभी की भाँति है जिसकी खुशबू सब लेते हैं। आत्मा संसार में भ्रमित है। जन-धन और परिजनों में उलझी रहती है। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए सद्गूरु ही एक सहारा है। अत: भक्ति और भजन के बीना पर जीवन व्यर्थ ही चला जायगा।

संदर्भ सहित व्याख्या - नमूना

''कौन ठगना नगरिया लूटल हो
चंदन काठ के बनल खटोलवा, तापर दुलहिन सूहल हो।
उठो रि सखी मोरी माँग समारो, दुलहा मोसे रूठल हो।

व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियाँ ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा के प्रवर्त्तक कबीर की रचना से ली गयी है। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने यह बताया है कि व्यक्ति की मृत्यु अनिवार्य है। इस निर्गुन पद में अरथी पर लेटे हुए पार्थिव शरीर के माध्यम से मानव प्राणी की व्यथा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। मृत्यु के देवता यमराज सबके प्राण हर लेते हैं। उसे ही नगर लूटने वाला ठग कहा गया है। मृत शरीर को जिस बाँस की ठठरी पर रखा जाता है, उसे चंदन की लकड़ी का बना हुआ खटोला कहा गया है। पार्थिव शरीर को दुल्हन कहा गया है। जिस प्रकार सेज पर कोई दुल्हन आराम से सोई रहती है, ठीक उसी तरह अरथी पर मृत शरीर पड़ा रहता है। मृत शरीर का दुल्हा यानि उसकी आत्मा जो उससे रूठ कर सदा-सदा के लिए दूर चला गया है। दुल्हन अपनी माँग सजाने की सोच रही है कि शायद उसके रूप सौंदर्य से मोहित होकर उसका दुल्हा उसके पास वापस आ जाए।

यह पद वैराग्य भाव का प्रेरक है, जिसे प्रतिकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

❖❖❖

अभ्यास के प्रश्न

1. कबीरदास का जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. कबीरदास की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।
3. कबीरदास रचित 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो' पद का भाव स्पष्ट करें।
4. कबीरदास रचित 'भगति बिनु विरथे जनम गयो' पद के आधार पर कबीर की भक्ति भावना का परिचय दें।
5. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रसंग व्याख्या करें -

   1 साध संगति भगवान भजन बिन कही न सच्च रह्यो।
   ज्यों उद्यान कुसुम परफुल्लित किनहि न घ्राड लायो।
   तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि-फिरि काल हयो।

   2. चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँदिशि, धू-धू उठल हो।
   कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो।।

❖❖❖

3. सूरदास

जीवन-वृत्त एवं काव्यगत विशेषताएँ

सूरदास कृष्ण काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। अन्तर्नयन प्राप्त विख्यात कवि सूरदास का जन्म-काल 1478 ई० माना जाता है। उनका अवसान काल 1580 ई० है। दिल्ली के निकट सीही नामक गाँव में इनका जन्म एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। परम्परा के अनुसार ये जन्म से ही नेत्रहीन माने जाते हैं। बचपन में ही घर छोड़कर ये मथुरा (गऊघाट) में रहते थे और भगवान की भक्ति में विनय का पद बनाकर गाया करते थे। वहीं इनकी मुलाकात बल्लभाचार्य से हुई और उन्होंने इनके विनय पदों को सुनकर कहा- 'सूर है कै काहे को घिघियात है।' इसके बाद उन्होंने सूर को कृष्णलीला का गायन करने की बात कही। आगे चलकर बल्लभाचार्य ने इनको पुष्टि मार्ग के सिद्धान्तों का उपदेश दिया। सूर की प्रतिभा देखकर आचार्य ने इन्हें कृष्ण के कीर्तन का कार्य सौंपा और यही कीर्तन करते हुए इन्होनें विशाल पद साहित्य की रचना की। बल्लभ सम्प्रदाय में सूरदास की बड़ी प्रतिष्ठा थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने इन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' की उपाधि दी। अष्टछाप के कवियों में सूरदास क्रम से प्रथम ही नहीं बल्कि वे सर्वश्रेष्ठ हैं।

काव्यगत परिचय

सूरदास हिन्दी के उन विरल कवियों में हैं जिनके गीत महाकाव्य बन गए। हिन्दी में विरह और बाल साहित्य के अद्वितीय विधाता सूरदास ही हैं। सूरदास के नाम से अनेक ग्रंथ मिलते हैं परंतु इनके तीन ग्रंथ ही प्रमाणिक माने जाते हैं - सूर सारावली, साहित्य लहरी और सूर सागर।

सूर-सारावली एक प्रकार से सूर-सागर का सूची पत्र हैं। साहित्य लहरी रीति ग्रंथ प्रकृति की रचना है जिसमें नायिका भेद का निरूपण मिलता है। परन्तु सूर की ख्याति का आधार सूर-सागर को माना जाता है। सूर-सागर मूलत: श्रीमद्भागवत पर आधारित हैं। इसमें दशावतारों की कथा है जिसके नवम् स्कन्ध में रामकथा और दशम् के आगे कृष्ण का वर्णन मिलता है। इसमें उन्होंने कृष्ण के चरित्र एवं उनकी लीलाओं का वर्णन किया है। इसमें श्रीकृष्ण के शैशवावस्था और किशोरवस्था की लीलाओं का चित्ताकर्षक वर्णन मिलता है। कृष्ण के शैशव और किशोर की लीलाओं तथा राधा-कृष्ण के श्रृंगार, प्रेम, मिलन, विरह का वर्णन प्रस्तुत किये गए हैं। किसी कवि ने कहा है कि सूरदास ने वात्सलय का इतना वर्णन किया है कि अन्य कवियों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं है। ऐसा माना जाता है कि सूर-सागर में सवा लाख पद थे, परन्तु अभी केवल दस-बारह हजार पद ही उपलब्ध हैं। इन पदों के माध्यम से श्रीकृष्ण के लीला गान के क्रम में वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्र में सूरदास ने जिस प्रतिभा का परिचय दिया है उनकी विविधता तथा गहराई तक अन्य कोई कवि नहीं पहुँच सका।

सूरदास का काव्य मूलत: गीति काव्य है जो पद शैली लिखा गया है परन्तु इसमें वस्तु वर्णन तथा जीवन के विविध क्रियाकलापों, संवेदनाओं, मनोभावों तथा भाव-भंगिमाओं का इतना सूक्ष्म और विराट-वर्णन है जिसे देखकर यह विश्वास नहीं होता है कि वे वास्तव में जन्म से अंधे थे। इसी को देखते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि जो वर्णन सूर ने बंद आँखों से किया है, अन्य कोई कवि खुली आँख से भी नहीं कर सकता है।

सूरदास का प्रकृति-चित्रण भी बेजोड़ है। उन्होंने ब्रज प्रदेश के यमुना तट, वृंदावन, गोचारण भूमि आदि स्थलों का वर्णन विभिन्न समयों और ऋतुओं की पृष्ठभूमि में किया है।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन में वात्सल्य भाव की भक्ति को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। बाल रूप में शिशु लीला, बाल क्रियाएँ तथा नटखटी के अनके कार्यों का सूर ने जिस प्रकार वर्णन किया है, उससे ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण हमारे सामने स्वयं उपस्थित हों। बाल कृष्ण का किलकना, घुटनों के बल चलना, मचलना, लड़खड़ाना, दही और माखन चुराना, गोपियों के साथ क्रिड़ाएँ करना आदि प्रसंगों का जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक चित्रण सूरदास ने किया है वैसा किसी अन्य काव्य में उपलब्ध नहीं है।

अंधे होते हुए भी इन्होंने अपने रूप-सौंदर्य वर्णन में जिस प्रकार का भाव प्रस्तुत किया है वह आश्चर्य में डाल देता है। इनका रूप सौंदर्य का वर्णन आलंकारिक है जिससे हमें सौंदर्य की एक उत्कृष्ट दृष्टि और विविध उपमानों की कल्पना का चमत्कार भी देखने को मिलता है। परन्तु इनका भाव वर्णन सौंदर्य वर्णन से भी ज्यादा प्रभावशाली है। सूर ने भाव वर्णन में अपने मन में उठाने वाली अनेक प्रकार की भावनाओं का प्रसंगानुकूल चित्रण किया है। राधा और कृष्ण प्रेम प्रसंग तो अद्‌भूत है ही, रासलीला में वह प्रेम पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। एक तरफ तो सूर ने संयोग का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर वियोग का भी हृदय द्रावक चित्रण किया है।

श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा की दशा का सूर ने जितना अच्छा चित्रण किया है वह क्षमता किसी अन्य में नहीं है। उनका विरह वर्णन अत्यंत गंभीर एवं व्यापक हैं। ऐसा मालूम होता है कि कृष्ण के विरह में सारी प्रकृति दु:खी है। इस विरह वेदना के बीच सूरदास ने एक सुन्दर प्रसंग भ्रभरगीत की रचना की है। इस प्रसंग में कृष्ण का संदेश लेकर आए ऊधो जी के साथ गोपियों का वार्तालाप है जिसमें गोपियों के व्यंग और उपलाम्भपूर्ण कटूक्तियाँ अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। यह प्रसंग सूरसागर को उत्कृष्ट महाकाव्य की गरिमा प्रदान करता है।

सूरदास ने शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग अपने महाकाव्य में किया है। उनकी विशेषता है कि वे तत्सम व्रजभाषा के तद्‌भव शब्द मिलाकर साहित्यिक भाषा की रचना करते हैं। उनकी परिस्कृत ब्रज भाषा का प्रयोग भी विद्वानों को आकर्षित करता आया है। अलंकार और संगीत के विविध रागों का प्रयोग तो उनकी अन्यतम विशेषता रही हे। सूर के शुद्ध सरस प्रयोग से ब्रज भाषा भी धन्य हो गयी।

पद का वाचन

(1)

निसि दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे।

दृग अंजन न रहत निसि बासर, करे कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे।
आँसू सलित सवै भई काया, पल न जात रिस टारे।
'सूरदास' प्रभू यहै परेखौ, गोकुल काहै बिसारे।

भावार्थ

सूर काव्य में 'भ्रमरगीत' हिन्दी साहित्य का अनमोल धरोहर है। प्रस्तुत पद वहीं से गृहित है। भ्रमरगीत में सूरदास ने विरह की मार्मिकता का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है।

भक्त कवि सूरदास का प्रस्तुत पद विरह-विदग्ध गोपियों की भावविह्लता का मार्मिक उदाहरण है। गोपियाँ अपनी दीन दशा जिस-तिस की सुनाती रहती हैं कि उनके नयन अहर्निश आँसू बहाते रहते हैं। जब से श्याम गए हैं तब से मौसम बदला ही नहीं। बस वर्षा ऋतु जारी हैं आँखों का काजल धुल-धुलकर बहता रहता है, चोली-साड़ी सूख नहीं पाती क्योंकि वक्ष पर अश्रुधारा बहती रहती है। आँखों में काजल लग नहीं पाता है। लगाने की कोशिश तो करती है लेकिन काजल ने आँसुओं के साथ धुलकर कपोल और हृदय को काला कर दिया है। आँसुओं के प्रवाह में यह देह डूब-उतरा रही है। पल भर को भी चैन नहीं मिलता। सूर समझते हैं कि संभवत: भगवान कृष्ण अपनी प्रेमिका भक्तिनों की परीक्षा ले रहे हैं। वे गोकुल तथा गोकुलवासियों को बिसार कर जाँचना चाहते हैं कि आँसुओं के समुद्र में डूबने से कौन बचाने आता है?

यहाँ गोपियों के प्रेम की प्रगाढ़ता और विरह की मार्मिकता का वर्णन किया गया है। जब इन्द्र के कोप से जल बढ़ गया था तब श्रीकृष्ण ने ही बचाया था। आज विरह के प्रकोप से जल बढ़ गया है तो ऐसी दशा में कृष्ण ही रक्षा कर सकते हैं। गोपियाँ मन-ही-मन उलाहना देती हैं कि प्यारे कन्हैया, आपने हमें क्यों भुला दिया? पद की मार्मिकता तथा भाव व्यंजकता अद्‌भूत है क्योंकि यहाँ सूर ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा उड़ेलते हुए विरहिनी की मनोव्यथा दर्शाया है।

पद का वाचन

(2)

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुन्दर कगरी, अरू कुञ्जन की छांही।
वे सुरभी, वे बच्छ दोहती, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि बाहीं।
यह मथुरा कञ्चन की नगरी, मनि-मुकुताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवत वा सुख को, जिय उमगत तनु नाहीं।
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नन्द निबाहिं।
'सुरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं।

भावार्थ

हिन्दी काव्य-परम्परा में 'भ्रमरगीत' का स्थान अन्यतम एवं विलक्षण है। भौंरे को लक्ष्य करके गोपियों ने उद्धव तथा कृष्ण को उलाहने दिया और वही भ्रमरगीत के नाम से प्रसिद्ध हो गया। सूर के वियोग-वर्णन में उच्च कोटि की गीतात्मकता है।

यहाँ प्रसंग यह है कि उद्धव निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर गोकुल से लौट आए है और कृष्ण से ब्रजवासियों की व्याकुलता का वर्णन कर रहे हैं, गोपियों की व्याकुलता की बात सुनकर इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण अपनी व्याकुलता का वर्णन उद्धव से करते हुए कहते हैं कि हे उद्धव, मुझे ब्रज की यादे नहीं भूल रही है, वहाँ का सुन्दर ग्वाल-बाल के साथ मिलकर कोलाहल करना, हाथ से हाथ पकड़कर नाचना इत्यादि की जब मुझे याद आता है तो मन आनन्द से भर जाता है। यद्यपि मथुरा सोने की नगरी है, यहाँ मणियाँ जड़ी हुई हैं फिर गोपियों के साथ रासलीला करने में जो वहाँ आनन्द आता था, वह यहाँ नसीब नहीं हो रहा है। मैं गोकुल में अनेक प्रकार से लीलाएँ करता था तो वहाँ लोग मुझे यशोदानंदन कहा करते थे। वह सुख मुझे इस सुनहली मथुरा नगरी में नहीं मिल रहा है। सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण बार-बार यही कह कर मौन हो जाते हैं। इस तरह श्रीकृष्ण का गोकुल के प्रति प्रेम भावना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इस रचना में देखने को मिलता है।

संदर्भ सहित व्याख्या - नमूना

''निसि दिन बरसरत नैन हमारे।
सदारहति पावस रितु हम पर, जब तैं श्याम सिधारे
दृग अंजन न रहत निसि बासर, करे कपोल भए कारे।''

व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य पुस्तक कविता कानन में संकलित महाकवि सूरदास के पद से उद्धृत है। ये भक्तिकाल के सगुण धारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

इस पद में श्री कृष्ण की विरह में डूबी गोपियों की विरह दशा का मर्मस्पर्शी वर्णन है। विरहिणी गोपियाँ दिन-रात रोती रहती है। प्रतिदिन उनकी आँखों से आँसूओं की वर्षा होते रहती है। सदैव उन पर वर्षा ऋतु छाया रहता है। जब से श्री कृष्ण ब्रज से मथुरा चले गये हैं, तब से उनकी दशाा अत्यन्त दयनीय है। आँखों का काजल आँसुओं की धारा में बहकर गाल को काले कर देते हैं।

इस पद से यह स्पष्ट होता है कि प्रेम जितना गहरा होता है, वियोग उतना ही दु:खद। गोपियों का कृष्ण से अनन्य प्रेम है। अत: उनसे बिछड़ कर वे सदैव रोते रहती हैं। गोपियों की दशा रोते-रोते अत्यन्त दयनीय हो गयी है।

❖❖❖

अभ्यास के प्रश्न

1. सूरदास का संक्षिप्त जीवन-वृत प्रस्तुत करते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करें।
2. 'भ्रमर गीत' के आधार पर सूरदास के वियोग-वर्णन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. कविता कानन में सकलित सूरदास के पदों का भाव स्पष्ट करें।
4. 'निसि दिन बरसत नैन हमारे' पद का भाव स्पष्ट करें।
5. सूरदास द्वारा रचित 'ऊधो मोहिं ब्रज विसरत नाहीं' पद की समीक्षा करें।
6. निम्नलिखित पंक्तियों की सप्रंसग व्याख्या करें -

   ''ऊधो मोहिं ब्रज विसरत नाही,
   हंस सुता की सुन्दर कगरी, अरू कुञ्जन की छांही।
   वे सुरभी, वे बच्छ दोहती, खरिक दुहावन जाहीं।''

❖❖❖

4. गोस्वामी तुलसीदास

जीवन-वृत्त एवं काव्यगत विशेषताएँ

अपनी व्यापक दृष्टि और सम्पूर्ण जीवन चिंतन के साथ जो आज तक हिन्दी साहित्याकाश में अपनी कीर्ति का ध्वजा फहरा रहा है, उसे मर्यादावादी राम-भक्त कवि तुलसीदास कहते हैं। राम परम्परा को उन्होंने इतनी ऊँचाई तक पहुँचा दिया कि उसके बाद किसी ने कलम उठाने की हिम्मत नहीं की। उनकी वाणी एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें भारतीय दर्शन, धर्म और कला का अद्‌भुत समन्वय है।

धर्म, संस्कृति और मूल्य मर्यादाओं के साथ साहित्य का प्रखर नेतृत्व करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त में मतैक्या का अभाव है। अनेक मत मतान्तरों के उपरंत विद्वानों द्वारा तुलसीदास का जन्मकाल 1532 ई० तथा मृत्यु 1623 ई० को स्वीकार किया गया है। उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में आत्माराम दूबे की पत्नी हुलसी के गर्भ से इस बालक का जन्म हुआ था। बचपन में ही इनके माता-पिता स्वर्गवासी हो गए थे। वे भटकते हुए सूकर खेत पहुँचे जहाँ नरहरि दास को गुरु रूप में प्राप्त कर उनसे राम कथा सुनी। उनका बचपन का नाम राम बोला था। विभिन्न उल्लेखों से यह भी पता चलता है कि वे उच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु जाति-पाति में इनका विश्वास नहीं था। नरहरि दास से राम कथा का मर्म समझ कर चित्रकूट चले गये और वहाँ राम कथा कहने लगे। उसी समय उनका विवाह रत्नावली नामक ब्राह्मण कन्या के साथ हुआ। ऐसा माना जाता है कि रत्नावली के उपदेश से इन्हें बैराग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद वे अयोध्या, काशी, चित्रकूट आदि स्थानों पर रहकर ज्ञानार्जन करते हुए काव्य की रचना की।

तुलसीदास की दर्जनों रचनाओं का उल्लेख मिलता है पर इनमें प्रमुख है- रामचरितामानस, विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, वरबैरामायण, हनुमान चालीस, पार्वती मंगल, जानकी मंगल आदि। रामाश्रयी सगुण भक्ति धरा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास ने विशेष रूप से शिव-पार्वती तथा राम और हनुमान को काव्य में स्थान दिया है।

तुलसीदास में दृष्टि की व्यापकता, भावों की उज्ज्वलता और मानव मूल्यों व आदर्शो का समावेश मिलता है। अपनी व्यापक दृष्टि के भीतर तत्कालीन सम्पूर्ण विविधताओं और मत-मतान्तरों का समन्वय कर उन्होंने समाज को समता और सद्‌भावना का रास्ता दिया। उन्होंने शैव और वैष्णव, सगुण तथा निर्गुण, ऊँच और नीच, राजा और प्रजा, गरीब और अमीर का समन्वय किया। यही वह समन्वय चेतना थी जिसके चलते उस समय सम्पूर्ण उत्तर भारत को एक सूत्र में बाँधा। भारत में वहीं लोकनायक होगा, जिसकी दृष्टि समन्वयात्मक होगी, इस दृष्टिकोण से तुलसीदास लोकनायक कवि के रूप में गिने जायेगें।

तुलसीदास की रचनाओं में मर्यादा का अटूट बंधन मिलता है। उन्होंने जिस मर्यादावादी दृष्टि का परिचय दिया

है उसमें सम्पूर्ण भारतीय मूल्यों और आदर्शो की छवि दिखायी पड़ती है। जीवन संबंधों का इतना व्यापक विश्लेषण अत्यंत दुर्लभ है। पिता-पुत्र, माता-पिता, भाई-भाई, सेवक-मालिक आदि के संबंधों को अपने रामचरितमानस में काफी मधुरता और सहजता के साथ अभिव्यंजित किया है।

तुलसीदास भारतीय संस्कृति के संरक्षक कवि माने जाते है। उनकी रचनाओं में सांस्कृतिक चेतना दिखायी पड़ती है। भारतीय संस्कृति की व्यापक उदारता, करूणा और सहज रागात्मकता को तुलसी दास ने व्यवहारिक रूप दिया है। तुलसीदास ने अवधी भाषा में अपनी रचनाएँ की। वे सगुण भक्ति को मानने वाले रामोपासक कवि हैं। उनकी भक्ति दास्य भाव की हैं राम उनके आराध्य हैं, उन्हीं को अवलम्बन बना कर तुलसीदास ने अपनी भक्ति का परिचय दिया है। तुलसीदास शैली की दृष्टि से प्रबंध और मुक्तक दोनों के कवि माने जाते हैं। जिस ऊँचाई के साथ इनमें प्रबंधात्मकता दिखायी पड़ती है उसी ऊँचाई के साथ इनमें मुक्तक के भी दर्शन होते हैं।

समासत: यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास हिन्दी साहित्य के ऐसे कवि है जिनकी रचनाओं को लेकर हम विश्व के किसी भी भाषा साहित्य के सामने खड़े हो सकते हैं। अत: तुलसीदास को विश्वकवि के रूप में मान्यता है।

पद का वाचन

मन पछितैं हैं अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भुज, करम वचन अरू ही तै।
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बली तै।
हम-हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते।
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करू नेह सबही ते।
अंतहु तोहिं, तजेंगे पामर! तू न तजै अबही ते।
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़, त्याग दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते।

भावार्थ

'रामचरितमानस' के अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास की ख्याति का मुख्य आधार उनका दूसरा ग्रंथ 'विनयपत्रिका' भी है। कविता कानन में विनयपत्रिका का ही कुछ सुंदर पद संकलित है। इस पद के माध्यम से कवि ने भगवत भक्ति पर जोर दिया है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि समय बीत जाने के पश्चात् मन को पछताना पड़ता है। इसलिए अवसर रहते ही भगवद भक्ति में लीन हो जाना चाहिए। भगवान ने यह जो दुर्लभ शरीर प्रदान किया है, उसके सहारे कर्म और वचन से उनकी भक्ति करें क्योंकि काल की गति बहुत प्रवल होती है। सहस्त्रबाहु और दस मुखों वाला जैसा समर्थ राजा भी काल के आगे घुटने टेक दिये। पूरा जीवन लोग यह मेरा है, इस पर मेरा अधिकार है आदि कह कर धन

और धाम को सँवारते रहते हैं। लेकिन अंत समय में उन्हीं खाली हाथ जाना पड़ता है। पुत्र और पत्नी स्वार्थ के वशीभूत होकर व्यक्ति के साथ रहते हैं लेकिन जब अंत समय आता है तो वे त्याग देते हैं। इसलिए तुलसीदास कहते हैं कि तू उन्हें अबही क्यों नहीं त्याग देते, वे कहते हैं कि इन बातों को समझने के पश्चात् अब जाग, अपनी जड़ता त्याग, बुरी प्रवृत्तियों को हृदय से निकाल ओर दीनानाथ से अनुराग कर।

उनका कहना है कि विषय-भोग रूपी घी से कामाग्नि और भड़क जाती है। इसलिए समय रहते भगवान की भक्ति भावना में लीन हो जाओ।

संदर्भ सहित व्याख्या - नमूना

1. **यह बिनती रघुबीर गुसाईं।**
   और आस-विस्वास-भरोसो, हरो जीव-जड़ताई॥1॥
   चहौ न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि विपुल बड़ाई।
   हेतु-रहित अनुराग राम-पद बाढ़े अनुदिन अधिवाई॥2॥
   कुटिल करम लै जाहिं-मोहिं जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
   तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाड़ियो कमह अंड की नाई॥3॥
   या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति-प्रतीति सगाई।
   ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों होहिं समिटि इक हाई॥4॥

भावार्थ

'कविता कानन' में संकलित तुलसीदास का दूसरा पद भी उनकी प्रसिद्ध रचना 'विनय पत्रिका' से संकलित है। इस पद के माध्यम से तुलसी ने निष्काम प्रेम की कामना की है।

कवि तुलसीदास अपने आराध्य देव रघुवीर से प्रार्थना करते हैं कि जीवों की जड़ता को दूर करें। वे पूरे विश्वास और आशा से प्रार्थना करते हैं कि जीवों की जड़ता और मूर्खता दूर करें। वे अच्छी गति, मति और सम्पत्ति नहीं चाहते, नहीं वे ऋद्धि और सिद्धि या फिर काफी यश भी नहीं चाहते हैं। उन्हें बस अपने प्रभु श्रीराम के प्रति निष्काम प्रेम चाहिए। उनका प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाए यही कृपा चाहिए। ईश्वर से किसी भौतिक पदार्थ की माँग करना स्वार्थ है। भगवान अन्तर्यामी हैं। वे सब कुछ बिना माँगे देते हैं। व्यक्ति का काम अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण है। हेतु-रहित अनुराग की कामना सर्वोत्तम भक्ति है तथा निःस्वार्थ प्रेम और भक्ति ही श्रेयकर है।

2. **''मन पछिते हैं अवसर बीते।**
   दुरलभ देह पाइ हरिपद भुज, करम वचन अरू ही तै॥
   सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
   हम-हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥''

व्याख्या

महाकवि तुलसीदास द्वारा रचित उनकी दूसरी प्रमुख रचना विनय पत्रिका का काव्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक कविता कानन में संकलित है। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने ईश्वर भजन के लिए लोगों को प्रेरित किया है।

प्रस्तुत पद्यांश के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास ने मानव जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला है। मनुष्य शरीर प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। लोग मानव शरीर पाकर मात्र धन संग्रह करने में व्यतीत कर देते हैं। ऐसे लोग भक्ति का अवसर खो देने पर अन्त में पश्चाताप करते रह जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को इस दुर्लभ देह प्राप्त करने के बाद कर्म और बचन से इश्वर का भजन करना चाहिए। मृत्यु का देवता काल महा शक्तिशाली है। उससे कोई नहीं बच पाता है। अतिशक्तिशाली सहस्त्रबाहु और दस सिर वाला रावण भी काल से नहीं बच पाया। लोग धन संग्रह करने के पीछे दीवाने हैं। मैं करके धन एकत्र किये और घर बनाये, लेकिन अन्त में उन्हें खाली हाथ ही इस संसार से जाना पड़ता है।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने लोगों को भगवान के प्रति भक्ति की प्रेरणा दी है। वे कहते हैं कि जब व्यक्ति को खाली हाथ ही जान है तो शरीर के रहते ईश्वर का भजन करते रहना चाहिए। भौतिक उपलब्धियों के पीछे भागते रहने से कुछ प्राप्त नहीं होगा। जबकि भक्ति से आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

❖❖❖

अभ्यास के प्रश्न

1. गोस्वामी तुलसीदास का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए उनकी भक्ति भावना एवं काव्यकुशलता पर प्रकाश डालें।
2. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
3. कविता कानन में संकलित 'मन पछतै हैं अवसर बीते' कविता का भाव स्पष्ट करें।
4. तुलसी रचित एवं कविता कानन में संकलित 'यह बिनती रघुवीर गोसाईं' पद का अर्थ स्पष्ट करें।
5. 'कविता कानन' पाठ्य-पुस्तक में संकलित तुलसीदास के पदों का भावार्थ लिखें।
6. निम्नलिखित काव्यांश की व्याख्या करें -

   ''सुत वनिता दि जानि स्वारथ, न करू नेह सबही ते।
   अंतहु तोहि, तजेंगे पामर। तू न तजै अबही ते।''

❖❖❖

5. बिहारी लाल

जीवन-वृत एवं काव्यगत विशेषताएँ

कविवर बिहारीलाल का जन्म विक्रम संवत् 1660 (1595 ई०) में ग्वालियर के बसुआ गोविन्दपुर में हुआ था। बिहारीलाल हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के रीति सिद्ध कवि होने के साथ ही उनकी भाव-धारा की संपूर्णत: आत्मसाक्षात करके भी प्रत्यक्षत: आचार्यत्व न स्वीकार करने वाले महाकवि हैं। इनके पिता का नाम केशव राय था विवाह मथुरा ब्राह्मण की कन्या के साथ हुआ था। नि:संतान होने के कारण इन्होंने अपने भतीजे निरंजन को गोद ले लिया था। कहा जाता है कि बाल्यावस्था में ही ग्वालियर छोड़ कर ओर्छा चले गये थे। बिहारी ने अपनी काव्य प्रतिभा से महाराज जय सिंह तथा उनकी महारानी अनन्त कुमारी को बहुत प्रभावित किया था। फलत: ये उनके राजकवि बने तथा ढेरों पुरस्कारों और प्रशंसाओं के पात्र बने।

उनके द्वारा रचित 'सतसई' इतनी लोकप्रिय हैं कि जाने कितने लोगों ने उसको पल्लवित किया, उसके भाव पर कवित्त और छप्पय लिखे। उन्होंने मात्र सात सौ दोहे लिख कर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है - ''बिहारीलाल ने सतसई के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ नहीं लिखा। यही उनकी कीर्ति का आधार है।''

बिहारी रसिक जीव थे; किन्तु इनकी रसिकता नागरिक जीवन की रसिकता थी। स्वभाव से ये व्यंग-विनोद प्रिय थे। इनके काव्य में श्रृंगारबहुलता है। नख-सिख वर्णन तथा रूप सौंदर्य वर्णन इनके प्रिय विषय रहे हैं। इनके विरह-वर्णन अतिरंजितापूर्ण हैं। इनके कुछ दोहे वीर रस प्रधान हैं। अलंकारों के माहिर प्रयोक्ता बिहारी थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह देने की कला के धुरंधर आचार्य थे। प्रसंगानुकूल कथन तथा शब्दों का चयन बिहारी की अपनी विशेषता है। भाव और प्रसंग के अनुरूप ढलती-बदलती रहने वाली बिहारी की भाषा 'सतसई' एक सुंदर उदाहरण है। कहा जाता है कि इसकी जितनी टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं उतनी रामचरितमानस के अलावा किसी अन्य ग्रंथ की नहीं लिखी गयी है। इन्हें जो सम्मान मिला उसे देख अन्य कवियों को प्रेरणा मिली। मुक्त काव्य की सारी खूबियाँ इनमें विद्यमान हैं तथा चर्मोत्कर्ष को प्राप्त हुई हैं। उनकी पहली रचना इस दोहा को माना जाता है-

''नहिं पराग, नहीं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सो विन्ध्यो, आगे कौन हबाल॥''

बिहारी की नायिकाओं का गोरापन आँखों में दुधिया चाँदनी उड़ेलती खुशूबू की डोर पकड़कर पता लगाती है। मुहल्ले में गोरी नायिका जब से आयी है, तब से चाँद के उगने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं नही है। ऐसे रोचक वर्णन बिहारी के दोहों में है, न कि जीवन की पेंचदार समस्याएँ। बिहारी के बारे में कहा जाता है -

''बिहारी ने अपने रूप-चित्रों के कनक-कोटरों में इतना मधु भर दिया है, इतना लावण्य उड़ेल दिया है कि काव्य-रीसक कभी भी उसकी उपेक्षा नहीं कर पाएँगें।'' किसी समालोचक ने सतसई के संबंघ में लिखा है- ''यदि मानस हिन्दी कविता-कामिनी की माँग व टीका है तो 'बिहारी सतसई' उस कामिनी की अनामिका उंगली की नगजड़ी अंगूठी।''

निम्न दोहा तो हिन्दुस्तानियों की जिह्वा पर चढ़े सदियों बीत चुकी हैं-

सतसैया के दोहरे, अरू नावक के तीर।

देखन में छोटन लगै, घाव करे गंभीर॥

नि:संदेह बिहारी कला-निपुणता के पर्याय चेतन कवि हैं। उनके दोहों में यत्र-तत्र नाद व्यंजना के उदाहरण भरे पड़े हैं। यथा-

''छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।

ठौर-ठौर झूमत झपत, झौर-झौर मधुअंध॥''

यहाँ वसंत का वर्णन है, जिसमें मादकता ही मादकता होती है। आम के बौर की सुगंध से तथा माधवी लता की गंध से सने भौरों के झुण्ड मस्ती में अंधे होकर ठौर-ठौर घूमते-फिरते तथा झपकियाँ लेते हैं।

कहीं प्रिय के सम्पर्क की हर वस्तु प्रिय लगने लगती है तो कही प्रसन्न करने के लिए कवि चतुर राधा की स्तुति करते हैं-

मेरी भाव-बाधा हरो, राधा नागरि सोय।

जा तन की झांई परै, स्याम हरित दुति होय।

बिहारी के समास-शक्ति का एक उदाहरण ही काफी है-

''दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।

परति गांठ दुरजन हियो, दई नई यह रीति।''

बिहारी का श्रृंगार वर्णन तो ऐसा जादू बिखरा जो सर चढ़कर बोलता है। चाहे बचपन की अल्हड़ता हो या यौवन की लालसा और तनाव, नारी के सौंदर्य का धूप-छांव चित्रण हो या प्रेम की उमंग का आँखों देखा हाल या फिर मधुर मिलन की प्रतीक्षा अथवा वियोग की दुस्सह पीड़ा। हर दृष्टि से 'सतसई' में रसिकों के हृदय को गुदगुदाने की जैसी क्षमता है, अन्य किसी में अनुपलब्ध है। बिहारी ने हिन्दी कविता को अनूठी कलात्मकता प्रदान की तथा हृदयों को स्फूरित करने और भावों को गुदगुदाने वाले दोहे रचे। सतसई के दोहे गागर में सागर का उदाहरण है। वास्तव में वे पश्चिमी खुलेपन को हिन्दुस्तान की धरती पर अपनी रचनाओं के माध्यम से उतारते रहे। इसीलिए कवि को उतना सम्मान नहीं मिल पाया जितना के वे अधिकारी थे। फिर भी यह कहा जा सकता है कि जब तक सतसई का एक भी दोहा रहेगा तब तक बिहारी की पहचान कायम रहेगी।

दोहे का वाचन

(1)

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सौं बाँध्यो, आगे कौन हबाल।

भावार्थ

महाकवि बिहारीलाल का यह एक प्रसिद्ध दोहा है जिसमें भ्रमर के माध्यम से अपनी नयी रानी के प्रेम में मुग्धासक्त राजा जय सिंह को प्ररित किया गया है। कहा जाता है कि बिहारी ने यह दोहा राजा जय सिंह के पास लिखकर भिजवाया था। उस समय राजा अपनी नवोढा रानी के प्रेम में इतने डूबे थे कि राजकाज तक नहीं देखते थे। बिहारी के इस दोहे ने राजा की आँखें खोल दी।

कवि कहते हैं कि न तो अभी इसमें पराग आया है न मकरंद की मिठास आई है और न इसका अभी पूर्ण विकास हुआ है। अगर भौंरा कली से ही इस प्रकार आसक्त होकर बँध गया है तो आगे चलकर जब यह कली फूल बन कर पराग तथा मकरंग से युक्त होगा उस समय तुम्हारी क्या दशा होगी?

(2)

पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर के चहुँपास।

नित प्रति पुन्योई रहै, आनन-ओप उजास॥

भावार्थ

रीति सिद्ध कवि बिहारीलाल का यह दोहा श्रृंगार विषयक दोहा है जिसमें नायिका के मुख की प्रशंसा सखी नायक से कर रही हैं। यहाँ कवि ने नायिका के मुख की तुलना पुर्णिमा के चाँद से की है। ऐसा माना जाता है कि रीतिकालीन युग में तिथि जानने के दो ही साधन उपलब्ध थे। एक तिथि पत्र और दूसरा चन्द्रकाल। यहाँ सखी नायिका की प्रशंसा करती हुई नायक से कहती है कि उस नायिका के घर के पास पत्रे से ही तिथि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि नायिका के मुख की चमक से वहाँ नित्य प्रति पूर्णिमा ही रहती है। प्रस्तुत दोहा में नायिका के चेहरे के सौंदर्य का वर्णन कर सखी नायक को आकृष्ट कराने का प्रयास कर रही है।

(3)

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।

को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर॥

भावार्थ

प्रस्तुत दोहा रसराज कवि बिहारी लाल के सतसई से उद्धृत है। यह एक श्रृंगारिक रचना है जिसमें राधा-कृष्ण

को सुनाकर एक सखि दूसरी सखी से कहती है। सखी राधा-कृष्ण की जोड़ी के संबंध में कहती है कि यह संबंध युगों-युगों से चली आ रही है इसलिए इनकी जोड़ी चिरंजीवी है। इन दोनों के बीच गंभरी स्नहें क्यों न जुड़े? दोनों में से कोई एक दूसरे से कम नहीं हैं। एक वृषभानु जैसे सामर्थवान व्यक्ति की पुत्री है तो दूसरे शेषनाग के अवतार हलधर (बलराम) के भाई हैं।

इस दोहा में कवि के कल्पना की समाहार शक्ति भाषा की समास शक्ति दोनों देखा जा रहा है। इसमें राधा और कृष्ण के स्नेह का चित्रण है। सखियाँ कहती हैं कि दोनों की उग्रता वंशगत है। यहाँ एक और अर्थ निकलता है जिसके मुताबिक राधा को बैल की बहन-वृषभ+अनुजा और कृष्ण को बैल - हल+धर का भाई अर्थात् साँढ़ कहा गया है। गाय और साँढ़ की मैत्री स्वाभाविक है।

(4)

मोहन मूरति श्याम की, अति अद्‌भूत गति जोय।

बसति सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय।

भावार्थ

प्रस्तुत दोहा बिहारीलाल द्वारा रचित प्रसिद्ध पुस्तक सतसई से ली गई है जिसमें ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन किया गया है। इस दोहा के माध्यम से हृदय का उद्‌गार व्यक्त किया गया है।

बिहारी के अनुसार भक्त कहात है कि रे मन! मोहनी मूरत वाले श्याम की अद्‌भुत गति है। वे बसते तो चित्त के अंदर हैं किन्तु जगत् प्रतिबिम्बित होता है। कवि यहाँ कहना चाहता है कि श्रीकृष्ण की मूर्ति में ऐसी मोहनी शक्ति है कि उनको हृदय में बसाते ही वे सर्वत्र दिखाई देने लगते हैं। इस भक्त विषयक दोहे में ईश्वर की सर्वव्यापकता को मनमोहक ढंग से चित्रित किया गया है।

(5)

कनक-कनक तैं सौगुनी, मादकता अधिकाइ।

उहिं खाएँ बौराई नर, इहिं पाएँ बौराई।

भावार्थ

प्रस्तुत दोहा यमक अलंकार का सुन्दर उदाहरण है जो बिहारीलाल की रचना का सुंदर नमूना है। इस दोहा में नीति का गम्भीर भाव दिखता है। बिहारी यहाँ कहते हें कि सोना और धतूरा दोनों को कनक का अर्थ बोध प्राप्त है परंतु दोनों के प्रभाव में बहुत अंतर है। धतुरा को खाने के बाद नशा या उन्माद प्राप्त होता है और सोना को प्राप्त करने मात्र से धतूरा की तुलना में सौ गुना उन्माद प्राप्त होता है। कवि ने कहने का तात्पर्य यही है कि नशीली वस्तु से तो खाने-पीने के बाद नशा होता है परंतु सोना अर्थात् धन के प्राप्त होने से आदमी को अहमियत का नशा यानि घमंड हो जाता है।

(6)

त्यों-त्यों प्यासेई रहत, ज्यों-ज्यों पियत अघाई।
सगुण सलाने रूप की, जू न चख तृष्णा बुझाइ॥

भावार्थ

यह दोहा कविवर बिहारी की अमर और अनूठी कृति सतसई से उद्धृत है। यह कवि की श्रृंगारिक रचना का उत्तम नमूना है। यहाँ नायिका नायक को बार-बार बड़े प्रेम से देखती है। सखी उसे लोकोपवाद का भय दिखा कर रोकती है। इसके उत्तर में नायिका का कथन है कि मेरे नयन जैसे-जैसे प्रिय के सगुण सलोने रूप को अघाकर पीते हें, वैसे-वैसे प्यास उसमें बढ़ती रहती है क्योंकि प्यास लगने वाले गुण से युक्त होने के कारण आँखों की तृष्णा बुझने की जगह बढ़ती ही जाती है।

यहाँ कवि का तात्पर्य है कि लवणयुक्त पानी (खारे पानी) से प्यास नहीं बुझती है। यहाँ लावण्य दो अर्थो में लिया गया है, लवणयुक्त और सुन्दर। जिस तरह से खारे पानी से प्यास नहीं बूझती है उसी तरह से सुंदरता को देखकर मन कभी अघाता नहीं है। इस दोहा में लवणयुक्त सौंदर्य का वर्णन है जो श्रृंगार रस का सुंदर उदाहरण है।

(7)

अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष सी होति।

भावार्थ

प्रस्तुत दोहा 'बिहारी सतसई' के सुंदरतम दोहों में से एक है। यह 'कविता कानन' काव्य संकलन से उद्धृत है जिसमें कविवर बिहारी ने श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य को प्रस्तुत किया है।

यहाँ राधा की सखियाँ राधा से कृष्ण के बाँसुरी बजाते सौंदर्य का वर्णन कर रही हैं। वह कहती है कि जब श्रीकृष्ण हरे रंग की बाँसुरी को धारण करते हैं तो उनके ओठ के लाल रंग, नेत्र के नीले रंग और पीताम्बर के पीले रंग से हरे रंग की बाँसुरी इन्द्रधनुष सी सप्तरंगी आभा सी प्रतीत होने लगती है।

(8)

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

भावार्थ

'कविता कानन' में संकलित यह दोहा 'बिहारी सतसई' से ली गयी है। कवि ने इस दोहे के माध्यम से जीवन की सत्यता पर प्रकाश डाला है। कविवर बिहारी लाल यहाँ ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड गर्मी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ग्रीष्मकाल में प्रचंड गर्मी ने इस संसार को तपोवन बना दिया है जिसमें साँप और मोर, बाघ और हिरण जो कि एक दूसरे के प्रबल शत्रु हैं, वे सभी अपनी शत्रुता भूल कर एक ही साथ रह रहे हैं।

इस दोहा से यह भी संदेश निकलता हे कि विवशता में प्राणी शत्रुता भूलकर एक हो जाता है। इसके माध्यम से ऋषियों की शक्ति और प्रभाव को भी दर्शाया गया है। तपोवन में कोई जीव एक दूसरे से शत्रुभाव नहीं रखते। यहाँ यह भी दर्शाया गया है कि प्राणी में प्राणों का संकट हो तो अपने प्राणों की रक्षा के लिए विपरीत स्वभाव के प्राणी एक हो जाते हैं क्योंकि जीवन सभी को प्रिय होता है।

(9)

करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छाँड़त नीचु।
दीनै हूँ चसमा धरै, चाहै लहै न मीचु॥

भावार्थ

रीति काल के रीति सिद्ध कवि बिहारीलाल की यह एक विरह का ऊहात्मक दोहा है जिसमें नायिका अत्यंत विरह वेदना को झेल रही है।

कवि कहते हैं कि एक प्रेयसी प्रेमी के वियोग में असह्य क्लेश झेल रही है। वह विरह की आग में अत्यंत कृशकाय हो गयी है। नायिका विरह के रोग से जर्जर हो चुकी है। इसके बावजूद भी विरह उसे छोड़ नहीं रहा है। उसका शरीर इतना जर्जर हो चुका है कि मृत्यु आँखों पर चश्मा लगा कर ढूँढ रही है। इसके बाद भी वह मिल नहीं रही है कवि का अभिप्राय यह है कि विरह में नायिका की स्थिति मरनासन्न है लेकिन उसकी न मौत हो रही है और न उसे विरह से मुक्ति मिल रही है। वह जीवन और मृत्यु के बीच कष्टों को झेल रही हैं।

(10)

समै समै सुंदर सबै, रूप कुरुप न कोई।
मन की रुचि जेती जिते, तित तेती रुचि होई॥

भावार्थ

बिहारी लाल के इस दोहे से स्पष्ट होता है कि दुनियाँ में कोई रूप सुंदर और कुरुप नहीं होता है। सौंदर्य वस्तु में नहीं बल्कि देखने वाले की दृष्टि में होती है। अर्थात्, हम यह नहीं देखते कि कोई वस्तु कैसा है बल्कि यह देखते हैं, हम कैसे हैं, जिसको जो अच्छा लगे वही सुंदर है। राम और कृष्ण श्याम वण थे लेकिन उनके जैसा रूपवान कोई और नहीं है। सामान्यत: गोरे रंग को सुंदर माना जाता है लेकिन हर गोरा व्यक्ति सुंदर नहीं होता है। इसी प्रकार हर श्याम वर्ण का व्यक्ति भी कुरुप नहीं होता है। यहाँ कवि ने मन के रूचि को सबसे महत्वपूर्ण बताया है अर्थात् जिसकी रुचि जिसमें हो वही उसके लिए सुंदर है।

संदर्भ सहित व्याख्या - नमूना

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर॥

व्याख्या

यह कविवर बिहारी को अमर और अनूठी कृति 'सतसई' को दोहा है। इसमें श्रृंगार रस की झलक मिलती है। इस दोहा में प्रेम की हर छवि और स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है।

विवेच्य पंक्तियाँ निरंतर साहचर्य और सानिध्य में उत्पन्न नैसर्गिक प्रेम का वर्णन है। प्रेम सम्पर्क, साहचर्य और सानिध्य से बढ़ता है। राधा और कृष्ण का प्रेम कोई नया नहीं है। बल्कि बचपन से उत्पन्न प्रेम की स्वाभाविक परिणति है। चिरकाल से साथ-साथ रहने से प्रेम गहरा होता है। राधा और कृष्ण अनन्त काल से साथ-साथ रह रहे हैं। 'वृषभानुजा' और 'हलधर' के वीर पद में श्लेष अलंकार है। वृषभ अनुजा या वृषभानुजा का अर्थ बैल की बहन अर्थात्, बछिया से है। हलधर की वीर का अर्थ हल में चलने वाले बैल से है। वृषभानुजा से तात्पर्य वृषभान की पुत्री राधा है। 'हलधर के वीर' का अर्थ बलराम के भाई से है। जिस प्रकार गाय और बैल की जोड़ी चिरकाल से है, उसी प्रकार राधा और कृष्ण की जोड़ी भी चिरकाल से है।

❖❖❖

अभ्यास के प्रश्न

1. कविवर बिहारीलाल की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. बिहारी लाल के पठित दोहों का काव्य-सौंदर्य एवं विशेषताएँ निरूपित करें।
3. ''बिहारीलाल के दोहो में भक्ति, नीति और श्रृंगार की त्रिवेणी बहती है।'' इस कथन की समीक्षा करें।
4. निम्नलिखित दोहों की व्याख्या करें -
   1. नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
      अली कली ही सो बँध्यो, आगे कौन हबाल।
   2. पत्रा हीं तिथि पाइयै, वा घर के चहुँपास।
      नित प्रति पुन्योई रहै, आनन-ओप उजास।।

❖❖❖

6. रसखान

जीवन-वृत्त एवं काव्यगत विशेषताएँ

रसखान का असली नाम सैयद इब्राहीम था परंतु हिन्दी-संसार केवल उनके उपनाम से जानता है। ये गोसाई विट्टलनाथ जी के प्रिय शिष्य थे। उन्होंने अपनी रचना प्रेमवाटिका के एक दोहे में दिल्ली राजवंश से अपना संबंध बतलाया है-

देखी गदर, हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान।।

इस दोहा के आधार पर माना जाता है कि रसखान कवि दिल्ली के निवासी थे तथा इनका जन्म दिल्ली के तत्कालीन शाही खानदान में हुआ था। ये पठान वंश के थे। रसखान का जन्म 1615 ई० तथा मृत्यु 1685 ई० में लगभग हुआ था। रसखान के यौवन की अनेक प्रेम कथाएँ प्रचलित हैं। पहले तो एक बनिये के खूबसूरत बेटे से प्रेम हुआ उससे इतना प्यार करते थे कि उसके बिना रहना कठिन था। एक दिन कुछ वैष्णव रसखान का उदाहरण देते हुए बतला रहे थे कि भगवान पर ऐसा प्रेम होना चाहिए जैसा बनिये के बेटे और रसखान का है। यह बात सुनते ही रसखान का जीवन बदल गया। वे गोकुल में रहने लगे। वहीं विट्ठलनाथ से दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनके शिष्य बन गए।

रसखान के संबंध में एक और कहानी प्रचलित है। रसखान किसी सुंदर स्त्री पर आसक्त थे। वह घमंडी थी तथा उनके प्रेम का अनादर करती थी। श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद में गोपियों के विरह का प्रसंग आया। उन्होंने सोचा कि जिस कृष्ण पर गोपियाँ जान देती थीं क्यों न उसी से प्रेम किया जाय और रसखान कृष्ण की भक्ति में मस्त हो गए तथा बाद में उन्होंने विट्ठल नाथ से दीक्षा ली।

रसखान फारसी के अच्छे ज्ञाता थे और श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद का गहन अध्ययन किया था। गोकुल में बस जाने के कारण ब्रज भाषा पर उनका पूरा अधिकार हो गया। वास्तव में रसखान ने बहुत कम लिख कर बहुत अधिक कीर्ति हासिल किया। उनके द्वारा लिखी गयी मात्र दो पुस्तकें उपलब्ध हैं- प्रेमवाटिका और सुजान रसखान। प्रेमवाटिका में कुल 52 दोहे तथा सुजान रसखान में कुल 129 पद्य हैं जिनमें दस सोरठा बाकी सभी सवैयां तथा कवित्त है। रसखान वैष्णव भक्त थे। उनका एक सवैया इस प्रकार है-

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहिं निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।।

इस रचना से पता चलता है कि वे कृष्ण के निर्गुण रूप से परिचित थे परंतु रसखान उस कृष्ण पर मुग्ध हैं जिनके सिर पर मोरपंख, हाथ में लुकटी और कमर में पीताम्बर है। रसखान उस कृष्ण पर निछावर हैं जिनके मुरली की तान गोपियों पर जादू कर गयी –

कोऊ रन काहु की कानि करै कछु चेटक सी जु करयो जदुरैया।

गाइगो तान जमाइयो नेह रिझाइयो प्राण चराइयो गैया॥

रसखान की भक्ति साख्य-भाव की है। कथा प्रचलित है कि वे कृष्ण के साथ गैया चराने जाया करते थे। साख्य-भाव रखने के कारण वे ढिठाई से कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते थे। जोगी, सन्यासी और सिद्ध निरंतर साधना करके भी जिसे नहीं पाते उसे अहीर की गँवरिन लड़कियाँ छाछ पर नचा रही हैं।

''ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरी छाछ पे नाच नचावैं।''

अपने आराध्य देव की लीला भूमि में स्थान पाने के लिए यदि अगल जन्म में पशु, पक्षी या पत्थर भी होना पड़े तो रसखान उसे अपना भाग्य ही समझेंगे-

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नितनंद की धेनू मंझारन।

पाहन हौं तो वही गिरि को धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।

जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्ब के डारन॥

रसखान का राग कृष्ण में स्थिर हो गया है, उन्होंने कृष्ण को आत्मसमर्पण किया है। दिल्ली की साहबी छोड़कर कृष्ण के लिए फकीर बने।

पद का वाचन

(1)

खंजन नैन फँदे पिंजरा छवि नाहि रहै थिर कैसहूँ माई।

छूटि गई कुलकानि रखी 'रसखानि' लखि मुसिकानि सुहाई॥

चित्त कढ़े से रहैं मेरे नैन न बैन कढ़ै मुख दीनी दुहाई।

कैसी करौं जिन जाव अली सब बोलि उठैं यह बबरी आई॥

भावार्थ

रसखान भाक्तिकाल के सगुण धारा के कृष्णाश्रयी भक्ति शाखा के प्रसिद्ध कवि रहे हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत इस छंद में श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का श्रृंगारिक चित्रण किया गया है। श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य पर गोपियाँ बाबली हो गयी हैं। खंजन पक्षी की तरह सुन्दर नेत्र वाले श्रीकृष्ण की छवि मन-रूपी पिंजरे में कभी कैद नहीं हो सकती क्योंकि उनकी छवि स्थिर नहीं रहती। जब से उनकी मधुर मुस्कान गोपियाँ देखी है तब से कुल की मर्यादा भूल

गयी हैं। उनका वह चित्र आँखों में सदैव घूमते रहता है। उनकी मधुर वाणी हमेशा सुनाई पड़ती है। गोपियाँ उसे किसी तरह से भूल नहीं पा रही हैं इसीलिए लोग बाबली कह रहे हैं।

इस रचना से स्पष्ट होता है कि प्रेम में व्यक्ति बाबला हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्रेमी अपने कुल की मर्यादा भी भूल जाता है। उसके एक मुस्कान पर अपना दिल दे बैठता है।

पद का वाचन

(2)

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहिहैं।
निस द्योस रहै संग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यों सहिहैं।
जिन मोहि लियो मनमोहन को 'रसखानि' सदा हमको दहिहैं।
मिलि आओ सबै सखी भाग चलैं अब तो ब्रज मैं बसुर रहिहैं।

भावार्थ

भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त रसों के खान कवि रसखान की यह रचना कविता-कानन में संकलित है।

इस छंद में गोपियों के ईर्ष्या भाव का उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्ण हमेशा अपने होठों से बाँसुरी लगाए रहते हैं। वे बाँसुरी बजाने में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि गोपियों तक को भूल जाते हैं इसीलिए गोपियाँ बाँसुरी को अपने सौतन के रूप में देखती है। वह कहती हैं कि श्रीकृष्ण का मन अब बाँसुरी में ही बस गया है क्योंकि वे हमेशा उसी में खोए रहते हैं। गोपियाँ ऐसा अनुभव करती हैं कि अब हमसे अधिक प्रिय उनका बाँसुरी ही है। अब वह सौतन (बाँसुरी) की ताप सहने को तैयार नहीं हैं। उसने मनमोहन का मन मोह लिया है। गोपियाँ विरह में जलते हुए निर्णय लेती है कि सभी सहेली ब्रज छोड़ कर भाग चलें क्योंकि अब उन्हें सौतन के साथ रहना मंजूर नहीं है। अब बाँसुरी ही ब्रज में रहेगी।

यहाँ कवि यह कहना चाहते हें कि गोपियों का कृष्ण के प्रति इतना प्रेम है कि एक निर्जीव बाँसुरी की संगति भी उन्हें असह्य हो रहा है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण एक उच्च कोटि के बाँसुरी वादक थे।

संदर्भ सहित व्याख्या-नमूना

''खंजन नैन फँदे पिंजरा छवि नाहि रहै थिर कैसेहूँ माई।
छूटि गई कुलकानि सखी 'रसखानि' लखि मुस्कानि सुहाई॥''

व्याख्या

प्रस्तुत पंक्तियाँ हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के सगुन धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के कवि 'रसखन' के सवैया से गृहित है। इन पंक्तियों में कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन है।

श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य पर मोहित एक गोपीयाँ बाबली हो रही है। खंजन पक्षी की तरह सुन्दर नेत्र वाले

श्रीकृष्ण की छवि मन-रूपी पिंजरे में कैद नहीं हो सकती। उनकी छवि स्थिर नहीं रहती है। जब से श्रीकृष्ण की मधुर मुस्कान देखी है, तब से कुल की मर्यादा भूल गयी है। उनके चित्र नेत्र में सदैव घूमते रहते है।

कवि का तात्पर्य है कि प्यार व्यक्ति को बावला बना देता है। प्रेमी समाज की मर्यादा को भूल जाता है। किसी की एक मुस्कान पर दिल दे बैठता है। खुद कवि रसखान भी सुजान के दीवाने हो गए थे।

❖❖❖

अभ्यास के प्रश्न

1. कवि रसखान का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं का वर्णन करें।
2. रसखान की भक्ति, भावुकता एवं कवित्व का मूल्यांकन प्रस्तुत करें।
3. रसखान का काव्यगत परिचय दीजिए।
4. कविता-कानन पाठ में दिए गए रसखान के पदों का भाव-सौन्दर्य स्पष्ट करें।
5. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या करें -

   ''कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन रखी हमको चहिहैं।
   निस द्योस रहै संग साथ लगी यह सौतिन ताप क्यों सहिहैं।

❖❖❖